दिशा संधान के बहाने दिशा भ्रम की पुरजोर कोशिश

जगजाहिर है कि पुराने कंगाल रईसों और उनके उससे भी ज्यादा कंगाल साहबजादों की नौदौलतियों से बहुत चिढ़ होती है। उन्हें वे जरा भी बर्दाश्त नहीं कर पाते। नौदौलतियों की परछाई मात्र उनमें गुस्से की कंपकंपी पैदा कर देती है। ऐसे में यदि वे कुछ बोलते हैं तो उनका मुंह झाग-फेन से भर जाता है। भगवान न करे ऐसे बिगड़ैल कंगाल रईसों से किसी का पाला पड़े। पर यह निर्मम दुनिया ऐसी है कि इनसे पाला पड़ ही जाता है।

ऐसे ही कुछ पुराने कंगाल रईस और उनके साहबजादे दो पत्रिकाएं लेकर एक बार फिर अपनी लुप्त होती शोहरत को बचाने के लिए मैदान में आ गये हैं। पिछले कई बार की तरह इस बार भी उन्होंने वादा किया है कि वे अपनी इन पत्रिकाओं का नियमित प्रकाशन करेंगे और हर संभव बात पर अपना फतवा जारी करेंगे। पर कंगाल रईसों के कर्ज चुकाने के वादों पर किसने भरोसा किया है?

फिलहाल इस लेख में हम इन कंगाल रईसों पर या इनके द्वारा चिह्नित नौदौलतियों पर कोई चर्चा नहीं करेंगे। इस लेख में हम केवल पुराने समाजवादी समाजों के आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन की इनके द्वारा बताई गई प्रासंगिकता और उसकी पद्धति पर चर्चा करेंगे। यह सवाल देश-दुनिया के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सवाल है और इस पर हमारी निश्चित राय है।

I

ऊपर जिन दो पत्रिकाओं की चर्चा की गई है उनके नाम हैं 'दिशा संधान (मार्क्सवादी सैद्धान्तिक सोच और विमर्श का मंच)' तथा 'नांदीपाठ (मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित)'। दोनों के सम्पादक कात्यायनी और सत्यम हैं तथा दोनों का ही पहला अंक अप्रैल-जून 2013 की तारीख लिए हुए है।

'दिशा संधान' का पहला लेख एक विशेष लेख है। इसका शीर्षक है- सोवियत समाजवाद के अनुभव : इतिहास और सिद्धान्त की समस्याएं। यह अभिनव सिन्हा के नाम से प्रकाशित है। इस पत्रिका का प्रकाशन क्यों किया जा रहा है (सम्पादकीय की एवज में - 'दिशा संधान' क्यों?) की चर्चा में तथा उक्त विशेष लेख के पहले हिस्से में यह बताया गया है कि बीसवीं सदी के समाजवादी समाजों के आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन की जरूरत आज क्यों है? इस सिलसिले में बहुत सी बातें कही गयी हैं लेकिन हम केन्द्रीय सूत्र पर ही केन्द्रित करेंगे तथा अपनी बात कहने से पहले पुराने रईसों की बात को विस्तार से उद्धृत करेंगे।

'दिशा संधान' क्यों? में बात यहां से शुरू होती है :

> "... ... ... दुनिया और देश के पैमाने पर अधिकांश कम्युनिस्ट ताकतों के बीच या तो कठमुल्लावाद की प्रवृत्ति गहराई से जड़ जमाए हुए है, या फिर धुरीविहीन 'मुक्त चिंतन' और सारसंग्रहवाद की रुझान हावी है। कुछ लोग पुरानी क्रांतियों से आलोचनात्मक संबंध स्थापित करते हुए नयी सदी के क्रांतिकारी प्रयोग के विभिन्न आयामों को समझने की बजाय उनका अन्धानुकरण करने पर आमादा हैं, तो कुछ अन्य लोग पुरानी क्रांतियों के आलोचनात्मक विवेचना के बिना ही उन्हें खारिज कर देने, और शून्य से नयी शुरुआत करने के मंसूबे बांधे हुए हैं। इन दोनों रुझानों में साझा बात यह है कि दोनों ही बीसवीं सदी के महान समाजवादी प्रयोगों से किसी भी किस्म का आलोचनात्मक रिश्ता कायम नहीं करना चाहतीं। ... ..." (दिशा संधान, अंक -1, अप्रैल-जून 2013, पृष्ठ-5)

और यहां तक पहुंचती है :

> "आज कम्युनिस्ट आंदोलन में जो वैचारिक विभ्रम की स्थिति बनी हुई है, उसके केन्द्र में मार्क्सवाद के कोर सिद्धान्त हैं जैसे वर्ग, पार्टी, राज्यसत्ता, सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व की अवधारणाएं। सोवियत समाजवादी प्रयोग और चीन में समाजवादी प्रयोगों के पतन के बाद जो संशयवाद कम्युनिस्ट आंदोलन में फैला, उसका असर आज भी मौजूद है। इन समाजवादी प्रयोगों की कोई सुसंगत आलोचनात्मक समझदारी न होने के कारण ही अन्धानुकरण और खारिज कर देने के दो अतिवादी छोर कम्युनिस्ट आंदोलन में मौजूद हैं। जो संशयवाद की लहर में बह गये हैं वे पार्टी और वर्ग अधिनायकत्व की वर्ग अवधारणा पर प्रश्न खड़े करने लगे हैं, और अराजकतावादी-संघातिपत्यवाद के सिद्धान्तों को ही नये शब्दों में पेश कर रहे हैं, तो कुछ ऐसे भी हैं जो संशयवाद की लहर पर अतिरेकी प्रतिक्रिया देते हुए या **नये का संधान करने** की जहमत से बचने के लिए सोवियत समाजवाद और चीन के समाजवादी प्रयोगों के किसी भी आलोचनात्मक विवेचन के खिलाफ हैं। **इस स्थिति के कारण ही आज कम्युनिस्ट आंदोलन में एक वैचारिक विभ्रम और बिखराव की स्थिति बनी हुई है।** इस स्थिति को दूर करने के लिए जरूरी है कि बीसवीं सदी के समाजवादी प्रयोगों का गंभीर आलोचनात्मक विवेचन किया जाय, नयी क्रांतियों में नये का संधान किया जाय और इस बात की भी निशानदेही की जाय कि बीसवीं सदी की महान और मौलिक क्रांतियों से आज भी क्या सीखा जा सकता है; जरूरी है कि मार्क्सवादी सिद्धान्तों के कोर तत्वों की हिफाजत की जाय और **इस बात को मजबूती के साथ स्थापित किया जाय कि नये के संधान का अर्थ नयी सदी की क्रांतियों की रणनीति और आम रणकौशल में नये का संधान है, न कि मार्क्सवादी सिद्धान्त के मूलभूत और बुनियादी तत्वों की तिलांजली दे देना;** विश्व कम्युनिस्ट

आंदोलन पहले भी ऐसे 'मुक्त चिंतन' की पर्याप्त कीमत अदा कर चुका है और इस बाबत एक विचारधारात्मक संजीदगी की जरूरत है। ... ...(वही, पृष्ठ-5-6, जोर हमारा)

यहां रेखांकित करने की बात यह है कि यह 'सम्पादकीय की एवज' में मार्क्सवाद पर बुर्जुआ हमलों के संदर्भ में ठीक आगे यह कहता है:

" ... ... आज का एक अहम कार्यभार यह भी बन जाता है कि ऐसे विचारधारात्मक हमलों के बरक्स न सिर्फ मार्क्सवाद की दृढ़ता से हिफाजत की जाय, बल्कि इन हमलों का मुंहतोड़ जवाब भी दिया जाय और दिखलाया जाय कि एक बार फिर से, इन नये हमलों में कुछ भी नया नहीं है और दरअसल पुराने बुर्जुआ सिद्धान्तों को ही नयी चाशनी में परोस दिया गया है। ... ..." (वही, पृष्ठ-6)

कोई भी सहज यह पूछ सकता है कि जब नये के संधान का अर्थ नयी सदी की क्रांतियों की रणनीति और रणकौशल का संधान है तथा जरूरत मार्क्सवाद की दृढ़ता से रक्षा करने की है और बुर्जुआ हमलों में नया कुछ भी नहीं है तो फिर कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को सोवियत और चीनी समाजवाद का **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** क्यों करना चाहिए? इस सबके लिए माओ द्वारा प्रस्तुत मूल्यांकन तथा उसका और उसके आधार पर पुनर्प्रस्तुतीकरण पर्याप्त क्यों नहीं है? लेकिन पहले इन्हीं की बातों को पूरा हो जाने दें।

अपने विशेष लेख में ये कहते हैं :

" ... ... सट्टेबाज, नववामपंथी और उत्तर-मार्क्सवादी विचारकों और दार्शनिकों को छोड़ दिया जाय, तो मजदूर आंदोलन और कम्युनिस्ट आंदोलन के भीतर ऐसी प्रवृत्तियां मौजूद हैं, जो सोवियत समाजवाद के आलोचनात्मक विवेचन की जरूरत को नहीं मानतीं, या **फिर इसे एक हल हुआ प्रश्न मानती हैं**। जो सोवियत समाजवाद के प्रयोगों के विश्लेषण को एक हल हो चुका प्रश्न मानते हैं, उनमें दो किस्म के लोग हैं।

"एक वे जो मानते हैं कि सोवियत समाजवाद के दौरान जो गलतियां हुयीं वे आकस्मिक किस्म की थीं, या इसलिए हुयीं क्योंकि समाजवादी प्रयोग का कोई उदाहरण पहले से उसके सामने मौजूद नहीं था। वे उन राजनीतिक-विचारधारात्मक त्रुटियों की ओर कोई ध्यान नहीं देते जो पार्टी में मौजूद थीं और जिनके खिलाफ लेनिन ने अपने समय में संघर्ष चलाया था और स्टालिन ने भी आनुभविक और लाक्षणिक तौर पर उस संघर्ष को जारी रखा था। वे सभी गलतियों को वस्तुगतता के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं और इसलिए किसी गंभीर आलोचनात्मक विश्लेषण की तरफ नहीं जाते। दूसरी ओर, कम्युनिस्ट आंदोलन के भीतर ही कुछ ऐसे लोग भी हैं जो बोल्शेविक पार्टी की आलोचना का काम हाथ में लेने का दावा करते हैं। लेकिन अफसोसनाक तरीके से वे ठीक उन्हीं चीजों के लिए बोल्शेविक पार्टी की आलोचना करते हैं, जिनके लिए एक सही सर्वहारा दृष्टिकोण से बोल्शेविक पार्टी की प्रशंसा की जानी चाहिए, कि एक आत्यंतिक रूप से प्रतिकूल दौर में, भयंकर प्रतिकूल परिस्थितियों में बोल्शेविक पार्टी ने आंतरिक संकटों और बाह्य दबावों व खतरों को झेलते हुए ऐसे शानदार ऐतिहासिक प्रयोग किये, जिनकी पूरे मानव इतिहास में मिसाल नहीं मिलती। ... ..." (वही, पृष्ठ-7-8, जोर हमारा)

इतना कहने के बाद से बताते हैं कि वे समाजवादी प्रयोगों के आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता तीन वजहों से समझते हैं : (1) सोवियत समाजवाद के निर्माण के दौरान बोल्शेविक पार्टी के भीतर जो बहसें हुयीं थीं और उनमें जो सवाल उठे थे वे आज भी कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के समक्ष अहम सवाल बने हुए हैं; (2) आज जब स्वत:स्फूर्त जनांदोलन उठ खड़े हो रहे हैं तब इनमें मजदूर वर्ग को सही नेतृत्व दे पाने के लिए यह जरूरी है; (3) पिछले दो दशकों में सोवियत समाजवाद के बारे में मार्क्सवादी और गैर मार्क्सवादी हलकों में जो पुनर्मूल्यांकन हुआ है उस संदर्भ में यह जरूरी हो जाता है। यह जरूरी हो जाता है:

"इसलिए नहीं कि वे कुछ नया कह रहे हैं। बल्कि इसलिए कि उनका कम्युनिस्ट आंदोलन के कुछ हिस्सों पर गहरा प्रभाव है, युवा बुद्धिजीवियों और क्रांति के प्रति अनुकूल रवैया रखने वाले छात्रों के बीच उन्हें पढ़ा जा रहा है और कम्युनिस्ट आंदोलन, बुद्धिजीवियों और छात्रों के बीच वैचारिक-बौद्धिक कमजोरी, इतिहास की कम जानकारी, प्राथमिक स्रोतों तक न जाने की आदत के कारण इतिहास लेखन के इन संशोधनवादी प्रयासों का काफी असर भी हो रहा है।"
(पृष्ठ-18)

और अंत में समाहार के तौर पर :

"**मौजूदा जनांदोलन में विकल्पहीनता, क्रांति के एक सकारात्मक प्रस्ताव की कमी और मजदूर वर्ग की एक क्रांतिकारी हिरावल पार्टी की अनुपस्थिति ने एक बार फिर से समाजवादी प्रयोगों के सकारात्मकों और नकारात्मकों के आलोचनात्मक विवेचन को प्रासंगिक बना दिया है।** इन प्रयोगों को अनालोचनात्मक तरीके से देखने और उनके अंधपूजन से, और साथ ही, उनके सही आलोचनात्मक विवेचन के बिना उन्हें खारिज कर देने की अनैतिहासिक प्रवृत्ति, दोनों ही आज के समय में भावी क्रांतिकारी परियोजना के लिए अनुत्पादक और इसलिए नुकसानदेह हैं। *इन प्रयोगों के पहले जो आलोचनात्मक विवेचन किये गये हैं उनकी मजबूतियों और कमजोरियों को भी समझने की जरूरत है।* सोवियत समाजवाद की सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक तौर पर जारी समकालीनता (कन्टेम्पोरेनाइटी) को समझे बगैर नयी सदी की समाजवादी परियोजनाओं का निर्माण नहीं किया जा सकता। यहां अतीतग्रस्त कठमुल्ला दृष्टिकोण और "मुक्त चिन्तन" अस्वीकरणवादी (रिजेक्शनिस्ट) दृष्टिकोण, दोनों अवांछित हैं। यह पुनर्मूल्यांकन इसलिए भी जरूरी है कि कम्युनिस्ट आंदोलन के भीतर और बाहर ऐसी प्रवृत्तियां मौजूद हैं जो कि अतीत के समाजवादी प्रयोगों, और विशेषकर सोवियत समाजवाद के प्रयोग, के इतिहास का गैर-सर्वहारा प्रस्तुतीकरण (विकृतीकरण) कर रही हैं, जिसका पस्तहिम्मती, कठमुल्लावाद, "मुक्त चिंतनवाद का शिकार कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों पर गहरा असर पड़ा रहा है। ... ..." (वही, पृष्ठ-16, जोर मूल में, इटैलिक्स हमारा)

II

उपरोक्त सारी बातों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि ये पुराने रईस मारना भी चाहते हैं और चोट भी नहीं पहुंचाना चाहते। इसीलिए वे परस्पर विरोधी बात करते हैं और अपने भांति-भांति के लक्ष्य घोषित करते हैं।

सबसे पहली बात तो यह नोट करने की है-इस पत्रिका में वे कम्युनिस्ट आंदोलन की मौजूदगी को स्वीकार करते हैं। इससे पहले वे कई बार कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर के मूलतः और मुख्यतः विघटित होने की बात कर चुके हैं। चूंकि उनके द्वारा इस विघटन की सूचना दिये हुए एक दशक से ज्यादा का समय गुजर चुका है, इसलिए यही माना जाना चाहिए था कि इस शिविर का अब नामो-निशान खत्म हो रहा होगा। इसके उलट इस पत्रिका में हम पाते हैं कि वे कम्युनिस्ट आंदोलन की बात कर रहे हैं। यह बड़ी अच्छी बात है। लेकिन उन्हें अपनी पहले की गलत बात को ज्यादा साफ-साफ और सीधे तरीके से वापस लेना चाहिए, घुमा-फिरा कर नहीं।

दूसरी बात मार्के की है कि वे बार-बार कहते है कि कुछ लोग सोवियत संघ के समाजवाद को हल हुआ सवाल मानते हैं, कि इसमें कोई दिक्कत नहीं देखते। हम इन फतवा जारी करने वाले मुल्लाओं से जानना चाहेंगे कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के अंदर वे कौन लोग हैं जो ऐसा मानते हैं। हमारी नजर में कम्युनिस्ट आंदोलन या कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन का मतलब है मार्क्सवाद-लेनिनवाद- माओ विचारधारा (या माओवाद) मानने वाले कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों का समूह। ऐसे सारे संगठन माओ विचारधारा या माओवाद मानने के चलते ही माओ त्से-तुंग द्वारा सोवियत समाजवाद की आलोचना को स्वीकार करते हैं। वे सोवियत समाजवाद की कमियों-खामियों को स्वीकार करते हैं और वे इस सोवियत समाजवाद के निर्माण के दौरान स्टालिन से हुयी गलतियों-भूलों को भी स्वीकार करते हैं। वे ऐसा माओ त्से-तुंग द्वारा प्रस्तुत समाहार की रोशनी में करते हैं। ऐसे में कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के संदर्भ में यह सवाल कहां से खड़ा होता है कि वे सोवियत संघ के समाजवाद को हल हुआ सवाल या प्रश्नातीत मानते हैं? यदि वे उसे हल हुआ या प्रश्नातीत सवाल मानते हैं तो केवल इसी अर्थ में कि माओ द्वारा प्रस्तुत समाहार से अलग या उससे आगे उनके पास कहने के लिए कुछ नहीं है। ये यदि सोवियत समाजवाद के बारे एक बार फिर बात करेंगे तो यह माओ द्वारा प्रस्तुत समाहार की रोशनी में ही पुनर्प्रस्तुतीकरण होगा, 'आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन' नहीं।

इस तरह ऐसे लोगों की एक श्रेणी तैयार करना जो सोवियत समाजवाद की कमियों-खामियों को नहीं मानते, जो यदि मानते भी हैं तो उन्हें आकस्मिक मानते हैं और उन्हें वस्तुगतता के संदर्भ में देखने का आग्रह करते हैं तथा फिर ऐसे लोगों पर बार-बार हमले करना अपनी कल्पना का शत्रु खड़ा करके उस पर हमला करना है। यह अपने द्वारा ही खड़े किये गये बिजूखे पर हमला करना है। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में कोई ऐसा नहीं है। हां इसके बाहर अनवर होजा के अनुयायी मिल जायेंगे जिनके मुंह से ऐसी बातें सुनी जा सकती हैं।

लेकिन तब फिर बार-बार इस फर्जी हमले की वजह क्या है? यह काल्पनिक शत्रु किसलिए खड़ा किया गया है? असल में इसके निहितार्थ इस सूत्र में छिपे हैं जो कि ढेरों बातों के अंबार में चुपके से प्रेषित कर दिया गया है-**'इन प्रयोगों के पहले जो आलोचनात्मक विवेचन किये गये हैं उनकी मजबूतियों और कमजोरियों को भी समझने की जरूरत है'।** इन आलोचनात्मक विवेचनों में पहला नंबर माओ द्वारा प्रस्तुत समाहार का आता है।

लेकिन इस मर्म बिन्दु पर बात करने से पहले कुछ और बात भी कर लें। एक जगह यह बात कही गयी है कि **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** का उद्देश्य है नये का संधान करना और नये के संधान से आशय है नयी सदी की क्रांतियों की रणनीति और आम रणकौशल को विकसित करना। लेकिन यदि उद्देश्य आने वाली क्रांतियों की रणनीति और रणकौशल विकसित करना है तो उसके लिए पुरानी क्रांतियों द्वारा स्थापित समाजवादी समाजों के **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** की क्या जरूरत है? आने वाली क्रांतियों की रणनीति और रणकौशल विकसित करने के लिए पुरानी क्रांतियों की रणनीति और रणकौशल का अध्ययन किया जाना चाहिए, उनके द्वारा स्थापित समाजवादी समाजों को क्यों निशाना बनाया जा रहा है? और यदि कोई कहता है कि पुरानी क्रांतियों द्वारा स्थापित समाजवादी समाजों के अध्ययन के बिना उन क्रांतियों की रणनीति और रणकौशल को ठीक से नहीं समझा जा सकता है तो यह बात अंशतः सच होगी। लेकिन तब इन समाजवादी समाजों का अध्ययन किया जाना चाहिए, उनके **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** का मसला कहां से आ जाता है। निश्चय ही पुराने समाजवादी समाजों का अध्ययन और उनका **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** एक ही बात नहीं है। यदि कोई कहता कि बिना आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन के कोई अध्ययन नहीं हो सकता तो यह परले दर्जे का कुतर्क होगा।

एक जगह इन पुराने रईसों ने कहा है कि **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** न होने के कारण 'कम्युनिस्ट आंदोलन में वैचारिक विभ्रम और बिखराव की स्थिति बनी हुयी है।' क्या यह बात सच है? जैसा कि हम पहले इंगित कर आये हैं कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन से आशय मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा (माओवाद) मानने वालों से है। ये सारे माओ द्वारा सोवियत समाजवाद के समाहार को मानते हैं। इस समाहार में सोवियत समाजवाद की उपलब्धियों के साथ-साथ इसकी कमियों/खामियों को चिह्नित किया गया है तथा इसके पीछे की गलत सोच को भी रेखांकित किया गया है। माओ विचारधारा मानने के कारण कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की इस पर सहमति भी रही है। ऐसे में यह सहमति इनके भीतर वैचारिक विभ्रम और इनके बिखराव का कारण कैसे बन गई? यह तो कहा जा सकता है कि इस समाहार को सही तरह से समझने और आत्मसात करने में असफलता ने या फिर इस समाहार से विचलन ने वैचारिक विभ्रम और बिखराव को जन्म दिया। लेकिन सहमति कैसे वैचारिक विभ्रम और बिखराव का कारण बन सकती है? और यदि मसला

माओ द्वारा प्रस्तुत समाहार को सही तरह से न आत्मसात करने या उससे विचलन का है तो कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के लिए इससे नितांत भिन्न कार्यभार निकलते हैं। इससे किसी भी सूरत में **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** का कार्यभार नहीं निकलता।

एक और जगह कहा गया है कि सोवियत संघ के विघटन के बाद पिछले दो दशकों में सोवियत समाजवाद के बारे में मार्क्सवादी और गैर मार्क्सवादी हलकों में जो शोध किये गये हैं, उनमें हालांकि नया कुछ नहीं है तो भी छात्रों, बुद्धिजीवियों और यहां तक कि कम्युनिस्ट आंदोलन पर इनके द्वारा पड़ रहे प्रभाव को देखते हुए **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** की जरूरत बनती है। शोध में नया कुछ भी नहीं कहा जा रहा है तो भी वे कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों द्वारा **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** को जरूरी बना देते हैं! यह बेहद अजीबो-गरीब तर्क है। सामान्य अवस्था में तो कोई भी यही कहेगा कि यदि नया कुछ नहीं कहा जा रहा है, तो पुराना मूल्यांकन पर्याप्त है, उसका पुनर्कथन अपना लक्ष्य हासिल कर लेगा। पर ये लोग तो कोई सामान्य लोग हैं नहीं। आखिर हैं तो बिगड़ैल कंगाल रईस ही! वे सामान्य निष्कर्षों पर क्यों पहुंचें? वे तो सामान्य से भी असामान्य निष्कर्ष निकालेंगे।

हर तरीके से यही निष्कर्ष निकलता है कि पुरानी क्रांतियों द्वारा स्थापित समाजवादी समाजों (चीनी समाजवाद के बारे में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौर के माओ कालीन समाहार मौजूद है) के **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** की कोई आवश्यकता नहीं है। इनके द्वारा बताये गये कोई भी कारण इस आवश्यकता को स्थापित नहीं करते।

लेकिन नहीं! एक कारण इस आवश्यकता को रेखांकित करता है और वह इस सारे पचड़े के मूल में है। जैसा कि हमने पहले इंगित किया है इन्होंने एक सूत्र चुपके से बाकी बातों के अंबार में घुसेड़ दिया था। वह सूत्र इस प्रकार है :

> "इन प्रयोगों के पहले जो आलोचनात्मक विवेचन किये गये हैं उनकी मजबूतियों और कमजोरियों को भी समझने की जरूरत है।"

यही पूरे मामले का सारतत्व है। और कहना न होगा कि यह **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** का पर्याप्त आधार प्रदान करता है। यदि कोई यह कहता है कि पहले के आलोचनात्मक विवेचनों की मजबूतियों और कमजोरियों को समझने की जरूरत है तो वह यह केवल **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** के जरिये ही कर सकता है। या इसका उल्टा यह कहें कि वह जो कुछ भी करेगा वह **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** हो जायेगा।

अब सवाल यह उठता है कि पहले के समाहारों की मजबूतियों और कमजोरियों को क्यों समझा जाय? इसका केवल एक ही उत्तर हो सकता है, वह यह कि पहले के समाहार अब नाकाफी साबित हो रहे हैं। नये तथ्य, नये तर्क सामने आ चुके हैं जो पुराने समाहार को नाकाफी बना देते हैं। लेकिन यदि ऐसा है तो साफ-साफ, सीधे-सीधे कहा जाना चाहिए। एक अकेला यही तर्क ही **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** के लिए पर्याप्त होता। पर विडंबना यह है कि ये बिगड़ैल कंगाल रईस ऐसा नहीं कर सकते। इन्होंने खुद ही, इसी पत्रिका में कहा है कि बुर्जुआ वर्ग द्वारा मार्क्सवाद पर किये जा रहे हमलों में कुछ भी नया नहीं है, कि पिछले दो दशकों के संशोधनवादी ऐतिहासिक शोध ने भी कोई नई बात प्रस्तुत नहीं की है।

जैसा कि बार-बार रेखांकित किया गया है सोवियत समाजवाद के समाहारों में सर्वोपरि माओ द्वारा प्रस्तुत समाहार है। यदि पहले प्रस्तुत समाहारों की मजबूतियों और कमजोरियों की छानबीन की जायेगी तो सबसे पहले इसी समाहार की छान-बीन की जायेगी। सबसे पहले माओ पर ही सवाल खड़ा किया जायेगा। हम अच्छी तरह जानते हैं कि भाकपा (माले) लिबरेशन वालों से लेकर बाद के अन्य संशोधनवादियों ने इस काम को कैसे अंजाम दिया है।

यह एक ऐसा काम है जो आज इस काम को हाथ में लेने वालों की नियति तुरंत ही तय कर देता है। वह नियति यह है कि वे कम या ज्यादा समय में मार्क्सवाद को तिलांजलि दे देंगे और सुधारवाद का रास्ता पकड़ लेंगे। ये पुराने कंगाल रईस भी इस बात को इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि इसे दस तरीके से ढक-मूंद कर ही पेश कर रहे हैं। अन्यथा तो राजनीतिक ईमानदारी का तकाजा है कि इसे उन्हें अपने **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** की पताका पर गर्व से अंकित करना चाहिए था। इनके मुकाबले वे मार्क्सवादी बुद्धिजीवी ज्यादा राजनीतिक ईमानदारी का परिचय देते हैं जो खुलेआम घोषित करते हैं कि माओ द्वारा प्रस्तुत समाहार अपर्याप्त या गलत हैं और इसीलिए पुराने समाजवादी समाजों के आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन की जरूरत है।

इस संदर्भ में हम इन पुराने रईसों को एक पुरानी बात की याद दिलाना चाहेंगे। वली अहद के अब्बा हुजूर के नाम से एक पुस्तिका छपी है-'समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति'। राहुल फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित इस पुस्तिका का चौथा संस्करण अभी हाल में जनवरी 2010 में निकला था। इसमें सोवियत समाजवाद के समाहार और पुरानी क्रांतियों व उनके द्वारा स्थापित समाजवादी समाजों के पुनर्मूल्यांकन के बारे में दो शिक्षाप्रद पैराग्राफ इस तरह हैं :

> "सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के अनुभवों का सार -संकलन करते हुए माओ त्से-तुंग ने स्तालिन की योग्यताओं और उपलब्धियों के साथ ही उनकी भूलों और गलतियों का भी संतुलित और सांगोपांग विश्लेषण प्रस्तुत किया, इनसे निगमित आवश्यक निष्कर्षों-शिक्षाओं की रोशनी में चीन में समाजवादी क्रांति के प्रयोगों को महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की मंजिल तक आगे बढ़ाया और पहली बार पूंजीवादी पुनर्स्थापना पर कारगर रोक के लिए ठोस सिद्धान्त प्रतिपादित किये तथा व्यवहार में भी उनके सत्यापन के लिए प्रयोग की शुरुआत की। माओ द्वारा प्रस्तुत स्तालिन के मूल्यांकन और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की रोशनी में ही दुनिया भर के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी सोवियत समाज में समाजवादी प्रयोगों की मनोगत सीमाओं को आज समझते और विश्लेषित करते हैं।
>
> ... ...

"जहां तक माओ त्से-तुंग और चीन की पार्टी की भूलों-गलतियों का प्रश्न है, आज एक परिपक्व अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व का अभाव इनके सही-संतुलित मूल्यांकन के काम को अत्यंत कठिन बना देता है और वास्तव में इनके सम्यक आकलन-मूल्यांकन-समाहार का काम तो तभी हो सकेगा जब उसी स्तर का सामाजिक प्रयोग किसी देश-विशेष में हो रहा हो या हो चुका हो और उससे उन्नत स्तर के सामाजिक प्रयोग की आवश्यकता और पूर्वाधार मौजूद हो। केवल तभी माओ त्से-तुंग के निर्देशन और नेतृत्व में हुए महान समाजवादी प्रयोगों की त्रुटियों-कमियों से सबक लेकर नये सिद्धान्त विकसित किये जा सकते हैं और सामाजिक प्रयोगों द्वारा उन्हें सत्यापित एवं प्रमाणित किया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के इतिहास और नेताओं के मूल्यांकन और महान क्रांतियों की सफलताओं-असफलताओं के लिए उत्तरदायी मनोगत उपादानों के विश्लेषण में केवल यही दृष्टिकोण और पहुंच सही हो सकती है।" (शशि प्रकाश, समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवाद की पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति, राहुल फाउण्डेशन, चौथा संस्करण, जनवरी, 2010, पृष्ठ-63-64)

शायद वली अहद और उनके अज़ीमुश्शान अब्बा हुज़ूर को कुछ याद आया हो!

III

इन पुराने कंगाल रईसों द्वार **दिशा संधान** के विशेष लेख में जिन नौदौलतियों की आलोचना की गई है कम से कम वे सुसंगत लोग हैं। उनका खुलेआम कहना है कि माओ द्वारा प्रस्तुत सोवियत समाजवाद का समाहार पर्याप्त नहीं है। वे कहते हैं कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति सोवियत और चीनी समाजवादी समाजों की समस्याओं का कोई समाधान पेश नहीं करती। वे स्वयं महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति पर ही सवाल खड़े करते हैं। वे खुलेआम घोषित करते हैं कि 1930 के दशक से मार्क्सवाद का विकास ठहरा हुआ है और बिना इस ठहराव को तोड़े आज के कम्युनिस्ट आंदोलन की समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता।

ऐसे में जब ये लोग सोवियत और चीनी समाजवादी समाजों के आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन की बात करते हैं तो उनकी बात तर्कसंगत है। बल्कि उनकी अवस्थितियों को देखते हुए यही उनका प्रमुख कार्यभार बनता है। यह अलग बात है कि व्यवहारतः वे अपने प्रमुख कार्यभार से इतर अन्य गतिविधियों में संलग्न हैं। लेकिन तब भी उनके ऊपर वैचारिक तौर पर सुसंगत न होने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

लेकिन इन पुराने रईसों के बारे में क्या कहा जाय? इनके तर्क किसी और दिशा में हैं और निष्कर्ष किसी और दिशा में! या इनकी बातों में कोई सुसंगतता छिपी हुई है?

एक कोण से एक सुसंगतता नजर आती है और संभवतः यही इनकी इस कवायद का उद्देश्य भी है। सोवियत समाजवादी इतिहास के पिछले करीब दो दशकों में पुनर्लेखन का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा है :

"... ... ... युवा बुद्धिजीवियों और क्रांति के प्रति अनुकूल रवैया रखने वाले छात्रों के बीच उन्हें पढ़ा जा रहा है और कम्युनिस्ट आंदोलन, बुद्धिजीवियों और ऐसे छात्रों के बीच वैचारिक-बौद्धिक कमजोरी, इतिहास की कम जानकारी, प्राथमिक स्रोतों तक न जाने की आदत के कारण इतिहास लेखन के इन संशोधनवादी प्रयासों का काफी असर भी हो रहा है। इस असर का एक कारण यह भी है कि क्रांतिकारी छात्रों-युवाओं और बुद्धिजीवियों को अपने निम्न पूंजीवादी पूर्वाग्रहों के कारण सोवियत समाजवादी प्रयोग की ये नयी-नवेली आलोचनाएं आकर्षक लग रही हैं ....।" (वही, पृष्ठ-18)

दरअसल इस पत्रिका का और पुराने समाजवादी समाजों के **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** का लक्ष्य यही निम्न पूंजीवादी छात्र-युवा और बुद्धिजीवी हैं। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी इस पत्रिका के लक्ष्य (पाठक समूह) नहीं हैं। उनका जिक्र तो इस पत्रिका में केवल उनको लात लगाने के लिए किया गया है। उनके बारे में इस तरह की बातें निम्न पूंजीवादी छात्रों-युवाओं और बुद्धिजीवियों को बहुत अच्छी भी लगती हैं। इससे उनके निम्न पूंजीवादी अहं को बहुत संतुष्टि मिलती है।

कहना न होगा कि निम्न पूंजीवादी छात्र-युवा और बुद्धिजीवी हमेशा से ही बौद्धिक फैशनों के दिवाने रहे हैं। और पिछले कुछ दशकों से मार्क्सवाद की आलोचना तथा पहले के समाजवादी समाजों का छिद्रान्वेषण पूरी दुनिया के पैमाने पर बहुत लोकप्रिय बौद्धिक फैशन रहा है। 1990 के दशक में तो यह चरम पर पहुंच गया था।

ऐसे में आज भी मार्क्सवाद में या पहले के समाजवादी समाजों में खोट दिखाने वाली कोई भी बात इन निम्न पूंजीवादी तत्वों को बहुत आकर्षित करती है। मजे की बात यह है कि जिन नौदौलतियों की ये पुराने रईस आलोचना कर रहे हैं उनका भी एक तर्क यही है कि माओ द्वारा प्रस्तुत समाहार आज छात्रों-नौजवानों और बुद्धिजीवियों को संतुष्ट नहीं कर पाते। बुर्जुआ हलकों से जो बातें उठती हैं उनका यह समाहार जवाब नहीं दे पाता। इसलिए भी आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन की जरूरत है।

यही सच भी है। कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के दायरे में भी जो सवाल उठते हैं वे इसी बाहरी बुर्जुआ दबाव के कारण। उनके अपने क्रांतिकारी व्यवहार ऐसे कोई सवाल नहीं पैदा करते। जो इस बुर्जुआ दबाव में आ जाते हैं वे स्थापित सिद्धान्तों में छेड़-छाड़ करना शुरू कर देते हैं। इसकी शुरुआत **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** से ही होती है।

तो असल बात यह है कि इन पुराने कंगाल रईसों को इसी निम्न पूंजीवादी छात्र-युवा और बुद्धिजीवी समुदाय को संतुष्ट करना है। यही उनका पाठक समूह है। अब इसके समक्ष, जो कि निम्न पूंजीवादी पूर्वाग्रहों का शिकार है, यदि **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** की बात नहीं की जायेगी तो वह बात ही नहीं सुनेगा। यदि इसके सामने यह कहा जाता है कि हम पुराने समाजवादी समाजों के बारे में जो भी बात प्रस्तुत करेंगे वह माओ द्वारा प्रस्तुत समाहार की रोशनी में होगा तो यह तबका क्यों सुनेगा? वह तो स्टालिन और माओ के नाम से बिदक जाता है। ऊपर से तुर्रा यह कि इस तबके को कुछ नया सुनने का शौक होता है भले ही वह "नया" चार-पांच सौ साल

पुराना ही क्यों न हो। इसके सामने तो पुराने को भी नये के रूप में ही पेश करना होगा। पुरानी बात के पुनर्कथन को ही **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** के रूप में पेश करना होगा।

हम यूं ही यह बात नहीं कह रहे हैं। इन पुराने कंगाल रईसों ने छात्रों-नौजवानों और बुद्धिजीवियों के निम्न-पूंजीवादी पूर्वाग्रहों का कितना खयाल रखा है यह उनके द्वारा इसी विशेष लेख में आगे प्रस्तुत आलोचना में देखा जा सकता है। सुजीत दास की अवस्थितियों की आलोचना करते हुए इन्होंने जो उद्धरण दिये हैं उनमें स्टालिन के उद्धरण नहीं हैं। हां, ट्राट्स्की-बुखारिन के उद्धरण जरूर हैं। ये अच्छी तरह जानते हैं कि कम्युनिस्ट आंदोलन में सही बात के लिए भी ट्राट्स्की-बुखारिन के उद्धरण देने का चलन नहीं है। यह बात निम्न पूंजीवादी पूर्वाग्रहों को खलती भी है। इस तरह स्टालिन से परहेज और गाहे-बगाहे ट्राट्स्की-बुखारिन के सकारात्मक उद्धरण निम्न पूंजीवादी पूर्वाग्रहों का तुष्टीकरण है। यह इनके **आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन** को इन निम्न पूंजीवादी तत्वों की नजर में किसी हद तक सहनीय बना देता है।

लेकिन यह निम्न पूंजीवादी पूर्वाग्रह केवल इस किस्म के सतही तुष्टीकरण से तो तुष्ट नहीं होगा। उसे तो वास्तव में पुनर्मूल्यांकन चाहिए जो माओ द्वारा प्रस्तुत और कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन द्वारा मान्य मूल्यांकन से भिन्न हो। और ठीक इसीलिए ये पुराने कंगाल रईस 'पहले के आलोचनात्मक विवेचन की मजबूतियों और कमजोरियों को समझने' की बात करते हैं। यह बुर्जुआ हमलों के सामने घुटने टेकना नहीं है। यह निम्न पूंजीवादी पूर्वाग्रहों के सामने घुटने टेकना है। बुर्जुआ हमला और दबाव यहां पृष्ठभूमि में हैं। बुर्जुआ के हमले निम्न पूंजीवादी पूर्वाग्रहों का निर्माण कर रहे हैं और ये पुराने रईस उन पूर्वाग्रहों के सामने घुटने टेक रहे हैं। इन्हें लगता है कि इस तरह वे इस निम्न पूंजीवादी तबके को अपनी ओर खींच लेंगे। लेकिन इसके उलट वे खुद दूसरे पाले में खींच लिए जायेंगे।

मार्क्सवाद पर बुर्जुआ हमलों के बारे में अमूर्त, औपचारिक चेतावनी भरी बातें करना एक बात है, पर उसके हमलों को यथार्थ में चिह्नित करना और उसके सारे प्रभावों का मुकाबला करना एकदम भिन्न बात है। इन पुराने कंगाल रईसों का उदाहरण यह दिखाता है कि यह कोई आसान काम नहीं है। इनका हाल उन कबूतरों जैसा है जो 'बहेलिया आयेगा, जाल बिछायेगा, दाना नहीं चुगना है, जाल में नहीं फंसना है' रटते-रटते बहेलिए के जाल में फंस गये। या कि इन्हें जाल ही मन-मोहक लगने लगा है?

IV

जहां तक कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में मौजूद वैचारिक विभ्रम और इसके बिखराव की बात है, इसका कारण यह नहीं है कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी सोवियत संघ और चीन के समाजों में कोई कमी-खामी नहीं देखते या उसे वह 'हल हुआ सवाल' मानते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है सारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी इस सिलसिले में माओ त्से-तुंग द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण को और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को मानते हैं। लेकिन समस्या इसके बाद खड़ी होती है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद और माओ विचारधारा को मान लेना एक बात है और इसे आत्मसात कर इसे अपने सारे क्रांतिकारी कामों का मार्गदर्शक बना लेना एकदम भिन्न बात है। जैसा कि इन कंगाल रईसों के बारे में ही स्पष्ट है, ये जब भी कोई नयी बात कहते हैं तो वह मार्क्सवाद विरोधी होती है-यहां तक कि ये लेनिन की साम्राज्यवाद की अवधारणा को भी ठीक-ठीक प्रस्तुत नहीं कर पाते।

एक लम्बे समय से कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन की त्रासदी यह रही है कि इसकी मार्क्सवाद-लेनिनवाद -माओ विचारधारा की समझदारी अत्यन्त सतही रही है। ऐसे में यह अपने समय की क्रांति की समस्याओं का सामना करने में अक्षम रहा है। यह अपने समय के अनुरूप क्रांति की रणनीति और रणकौशल विकसित करने में असफल रहा है। उसकी यह असफलता उसके भीतर सूक्ष्म मतभेदों को जन्म देती रही है जो एक के बाद दूसरी फूट का आधार बनते रहे हैं। यह फूट-दर-फूट कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों के नेतृत्व की वैचारिक परिपक्वता को और नीचा कर समस्या को और ज्यादा विकराल बनाती रही है।

वैचारिक अपरिपक्वता की इस अवस्था में वैचारिक विभ्रम का बढ़ना लाजिमी है क्योंकि ऐसे में बुर्जुआ वैचारिक हमलों और निम्न पूंजीवादी पूर्वाग्रहों का प्रभाव बहुत प्रबल हो जाता है। बहुत जल्दी ही संशय हावी हो जाता है और इस काम के लिए पूर्णतया अक्षम नेतृत्व आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन का काम हाथ में ले लेता है। परिणामतः मार्क्सवाद से बाहर जाने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस प्रक्रिया की गति इन संगठनों के छोटे आकार के व्युत्क्रमानुपात में होती है जितना छोटा संगठन, उतनी ही तेज गति। कहना न होगा कि निम्न पूंजीवादी कूपमंडूकता भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

V

पिछली सदी की क्रांतियों और उनके द्वारा स्थापित समाजवादी समाजों के मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन के संदर्भ में हमारी निश्चित राय रही है और उसे हम समय-समय पर रखते रहे हैं। यहां हम कोई नयी बात रखने के बदले पहले कही बातों से एक लम्बा उद्धरण प्रस्तुत करने तक स्वयं को सीमित रखेंगे। यह उद्धरण किसी स्पष्टीकरण की मांग नहीं करता :

> "किसी क्रांति को सफलता पूर्वक सम्पन्न करने वाली पार्टी न केवल विचारधारात्मक मामलों मे विभ्रम मुक्त एवं दृढ़ होनी चाहिए बल्कि उस पार्टी के पास अतीत के संघर्षों का सही सार संकलन और वर्तमान परिस्थितियों का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन भी होना चाहिए। 1976 में माओ की मृत्यु के बाद चीन में प्रतिक्रांति के हावी हो जाने के पश्चात यह स्पष्ट हो चुका था कि सर्वहारा अपनी जीत और अपनी उपलब्धियों को कायम नहीं रख सका है, कि तात्कालिक संदर्भों में सर्वहारा की हार हुयी है। यह हार क्यों हुयी? इस हार में परिस्थितियों की कितनी भूमिका है? कम्युनिस्ट पार्टियों और उनके नेताओं की मनोगत गलतियों,

कमियों, समझौतों की ... ... कितनी और क्या भूमिका रही है? यह महत्वपूर्ण सवाल खड़ा हो चुका है। इस सवाल का सही उत्तर खोजे बगैर न तो भारतीय क्रांति सफल हो सकती है और न ही 21वीं सदी की अन्य क्रांतियां। हमारी राय है कि मामला केवल रूसी क्रांति और चीनी क्रांति के हार के कारणों को खोज निकालने और समझ लेने तक सीमित नहीं है। पूरी 20वीं सदी के वर्ग संघर्षों का समग्रता में सारसंकलन करने की जरूरत है (इसमें इंडोनेशियाई क्रांति भी आ जाती है, भारतीय क्रांति भी आ जाती है, और दुनिया की सभी शेष पूर्ण-अपूर्ण क्रांतियां आती हैं)। समग्रता में सार संकलन का काम, एक बहुत ही गंभीर और महत्वपूर्ण काम है। इस जिम्मेदारी को पूरा करने का सही तरीका क्या हो सकता है?

"सही सार-संकलन तभी हो सकता है जब सार-संकलन करने वालों के पास इस काम के लिए उचित क्षमताएं तथा पर्याप्त जानकारियां हों।

"इस तरह का सार संकलन करने वालों में इतिहास की गतियों एवं उपगतियों की एक गहरी समझ होनी चाहिए, इतिहास के विभिन्न दौरों एवं परिस्थितियों की सीमाओं का बोध होना चाहिए, वर्ग संघर्ष के नियमों, उसके उतार-चढ़ाव, पेचीदगियों-बारीकियों ... ... का एहसास होना चाहिए। ये क्षमताएं उन्हीं लोगों में पायी जा सकती हैं जिनके पास मार्क्सवाद की गहरी सैद्धान्तिक समझ के साथ-साथ वर्ग संघर्षों को विकसित एवं संचालित करने के व्यापक अनुभव हों। सुस्पष्ट है कि ऐसी क्षमताओं वाले लोग वर्ग-संघर्षों में तपी हुयी पार्टियों में ही पाये जा सकते हैं। जिन लोगों में वर्ग-संघर्ष को विकसित एवं संचालित करने की क्षमताएं तो बहुत दूर, अपने छोटे-छोटे पूर्व पार्टी संगठनों को विकसित करने की क्षमताओं का ही अभाव हो, वे तो किसी भी स्थिति में महान क्रांतियों एवं अंतर्राष्ट्रीय वर्ग-संघर्षों का सही सार-संकलन नहीं कर सकते। ऐसे अपरिपक्व लोग एकांगी एवं मनोगत नतीजे निकालने से बच नहीं सकते हैं।

"वैसे आज की टूट-बिखराव की स्थितियों मे दस्तावेजों एवं तथ्यों का जितना अभाव है, उससे कोई समग्र एवं सही तस्वीर उभर भी नहीं सकती है। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के तमाम महत्वपूर्ण दस्तावेज तथा साक्ष्य भारत के मार्क्सवादी-लेनिनवादी आंदोलन के पास उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी हालत में अगर हमारे पास उचित समझदारी एवं अनुभव वाले लोग होते भी, तब भी यह काम केवल तथ्यों एवं साक्ष्यों के अभाव में आज नहीं किया जा सकता था।

"ऐसी स्थिति में उक्त जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए क्या किया जाये?

"ऐसी स्थिति में उक्त जिम्मेदारी को पूरा करने की पूर्व शर्तें पूरी की जायें। यह माना जाये कि इस काम को सही तरीके से तो विश्व सर्वहारा का कोई केन्द्र ही पूरा कर सकता है। यह माना जाय कि आंशिक एवं अंतरिम तौर पर भी यह जिम्मेदारी एक अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ही पूरा कर सकती है। अतः पूर्व पार्टी संगठन एवं उनके नेता इस वृहद् काम का बीड़ा उठाने तथा बचकाने, एकांगी एवं मनोगत निष्कर्षों पर पहुंचने के बजाए अपने हिन्दुस्तानी आंदोलन एवं अपने अतीत का सही सार-संकलन करने की कोशिश करें। अगर वे ऐसा करते हैं तो अखिल भारतीय पार्टी बनाने में मदद मिलेगी। और पार्टी बनाने के बाद, भारत में वर्ग-संघर्ष विकसित करते हुए वे अंतर्राष्ट्रीय वर्ग-संघर्ष के सार-संकलन का बीड़ा उठायें।

"जब तक एक अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी कोई नया सार-संकलन प्रस्तुत नहीं करती तब तक हम सभी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की 10वीं कांग्रेस (अगस्त-1973) तक के सर्वमान्य सार-संकलन को समझने एवं आत्मसात करने का प्रयास करें। यही रुख विज्ञान सम्मत भी है और हमारे आंदोलन के हित में भी है। इस बात को रेखांकित कर देना इसलिए जरूरी है क्योंकि पिछले दो दशकों से हमारे आंदोलन के कुछ लोग दो-चार नये तथ्यों और दस्तावेजों के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय वर्ग-संघर्ष के बारे में पुराने स्थापित सार-संकलन को उलट कर अपनी मौलिकता प्रदर्शित करने की कोशिश करते रहे हैं। विगत दिनों में उन्हें नये अनुयायी मिले हैं। अगर इस अवैज्ञानिक प्रवृत्ति के खिलाफ संघर्ष नहीं किया गया और आंदोलन में इसके एकांगी निष्कर्षों को स्थापित होने दिया गया तो आंदोलन मे विभ्रम और बढ़ेंगे तथा आंदोलन की एकता और कमजोर होगी।

"अर्थात यह कि सही सार-संकलन के स्थान पर उथली, अवैज्ञानिक अटकलबाजी और नुक्ताचीनी से बचा जाये। पुराने स्वीकृत सार-संकलन को ही आधार मानकर अखिल भारतीय पार्टी के गठन का काम किया जाये चाहे मुद्दा 1921 की क्रोंस्तात की घटना हो, लेनिन की वसीयत से जुड़ा प्रसंग हो, समूचे स्तालिन काल का मूल्यांकन हो या 1937-38 की विशिष्ट घटनाएं हो, समाजवादी खेमे में युगोस्लाविया की वापसी का मामला हो, कोरियाई समझौते का मामला हो, 1957 एवं 1960 के घोषणा पत्र एवं वक्तव्य के मामले हों, लिन प्याओ के वारिस घोषित किये जाने का मामला हो या कोई अन्य पेचीदा प्रसंग। हमारा स्पष्ट मत है कि 20वीं सदी के वर्ग संघर्ष और विश्व व्यापी विपर्ययों का सार संकलन करना निहायत जरूरी है, परन्तु नीम-हकीमी करने के बजाय इनका वैज्ञानिक सार-संकलन किया जाये। पूर्व पार्टी संगठन स्वयं ऐसी नीम-हकीमी करने के बजाए इस दिशा में सही कदम उठायें, अखिल भारतीय पार्टी के गठन के लिए संघर्ष तेज करें, ताकि यह काम भी मुकम्मल तरीके से हो सके।"

(सम्पादकीय, लाल सलाम, अंक-1, जनवरी-2000, पृष्ठ-5-7)

[नोटः इसी संदर्भ में लाल सलाम के अंक-11, जुलाई-2005 में प्रकाशित लेख 'विचारधारा के बारे में' भी देखें।]